

सिनेमा के बदलते परिदृश्य और नारी

संजय कुमार सिंह

हिन्दी अध्ययनशाला
विक्रम विश्वविद्यालय,
उज्जैन (म.प्र.)

sanjays771990@gmail.com

जिस प्रकार साहित्य समाज का आईना होता है उसी प्रकार सिनेमा भी। सिनेमा समाज के विभिन्न समस्यात्मक विषयों को उठाकर जनमानस के सामने प्रस्तुत करता है। पुरुष समाज चिरकाल से ही नारियों पर एकाधिकार रखता आया और नारी को किसी न किसी तरह अपमानित, दण्डित, शोषित करता रहा है। चाहे मर्यादा पुरुषोत्तम राम रहे हों या महाभारत के महारथी, सभी ने नारी को ही अपमानित, दण्डित किया।

ऐसे कई उदाहरण इतिहास में मिल जाते हैं। नारी की अलग से पहचान नहीं बन पायी। पद्मावती जैसी वीर क्षत्राणी को भी पति की मृत्यु के उपरान्त जौहर करते देखा जा सकता है। उस समय अधिकतर फैसले पुरुष समाज द्वारा लिये जाते थे। सभी फैसले लेने का अधिकार पुरुषों को था।

इधर कुछ दिनों से महिला साहित्यकारों ने स्त्री स्वतंत्रता की आवाज उठायी है, जिससे स्त्रियों में एक नई ऊर्जा आयी है। नारी स्वतंत्रता की बात करते हुए सुधा अरोड़ा अपनी पुस्तक 'एक औरत की नोटबुक' में दिखाती हैं कि - "अपने पैरों पर खड़े होने लायक शिक्षा और आर्थिक आत्मनिर्भरता किसी भी लड़की को अपने पर होने वाली यातना को पहचान पाने की इतनी ताकत तो देती ही है कि वह उससे बाहर निकलकर अपने लिए एक राह बनाए।"¹ साहित्य के क्षेत्र में प्रभा खेतान, अनामिका, रमणिका गुप्ता आदि महिला लेखिकाओं ने स्त्री स्वतंत्रता की आवाज़ को मुखर किया। आज वही कार्य इधर सिनेमा भी कर रहा है। सिनेमा के 100 वर्ष पूरे हो चुके हैं। पहली बोलती फिल्म 'आलमआरा' (1931) से दर्शकों का ध्यान सिनेमा की तरफ आकर्षित हुआ। 1931 के पश्चात् ही समाज में व्याप्त नारी जीवन की विसंगतियों को लेकर कई फिल्में बनीं, जिनमें 'इंदिरा एम. ए.' (1934), 'देवदास' (1935), 'अछूत कन्या' (1936), 'बालयोगिनी' (1936), 'दुनिया ना माने' (1937) प्रमुख हैं। इन फिल्मों में नारी जीवन की समस्याओं को जनसमूह के समक्ष रखा गया है, जिनमें अशिक्षा, पर्दा-प्रथा, अनमेल विवाह आदि हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी सिनेमा में बदलाव आया। फिल्मों में व्यावसायिकता बढ़ी, जिस वजह से सामाजिक मुद्दे लगभग गौड़ हो गए। निर्देशकों का उद्देश्य सिर्फ मुनाफा रह गया।

‘देवदास’ फिल्म में वेश्या के पवित्र त्याग व आदर्श को दिखाया गया है। “चन्द्रमुखी एक तवायफ है, देवदास की बेचारगी का फायदा उठाने की कोशिश करने के बजाय वह उसे सहारा देती है।”² चन्द्रमुखी के माध्यम से वेश्या जीवन की त्रासदी दिखायी गयी है।

पाँचवें और छठवें दशक के फिल्मों ‘मदर इंडिया’, ‘कागज के फूल’, ‘मधूमति’ में नारी को माँ, पत्नी, प्रेमिका के रूप में स्थापित किया गया है और आठवें व नवें दशक की फिल्मों में नारी पक्ष को लेकर काफी बदलाव आया, सिनेमाई नारी चरित्रों में ही नहीं, बल्कि समाज में नारी के प्रति धारणा टूटी। नारी सिर्फ चहारदीवारी में रहने की वस्तु हैं समझने वालों को झटका लगा। सातवें और आठवें दशक के दौरान ही ‘इनक-इनक पायल बाजे’, ‘सुजाता’, ‘मिली’ जैसी फिल्मों ने, नारी किस तरह सामाजिक अन्तर्द्वंद्व में जीती है उसको प्रस्तुत किया।

नवें दशक में भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ा गया जिसके चलते भारतीय सिनेमा में विदेशी कम्पनियों की भागीदारी तेजी से बढ़ी जिसका प्रभाव सिनेमा के साथ-साथ भारतीय समाज की नारियों पर पड़ा। इधर कुछ फिल्में 1990 से 2000 के आस-पास आयी है जिनमें नारी के सामाजिक सवाल को ही नहीं बल्कि, राजनीतिक सवालों को भी उठाया गया है। इस बीच की कुछ नारी केन्द्रित फिल्मों को रेखांकित करना चाहूँगा - ‘सूरज का सातवाँ घोड़ा’ (1992), ‘दामिनी’ (1993), ‘बेडिट क्वीन’ (1994), ‘मम्मी’ (1994), ‘सरदारी बेगम’ (1998), ‘गाडमदर’ (1999), ‘गजगामिनी’ (1999), ‘जुबैदा’ (2000), ‘लज्जा’ (2001) आदि नाम हैं।

21वीं सदी के शुरुआत में ही सूचना क्रांति के साथ समाज में अमूल-चूल परिवर्तन देखने को मिला। सिनेमा घर भी इससे अछूता नहीं रहा। ‘क्या कहना’, ‘मि. एण्ड मिसेज अय्यर’, ‘लज्जा’, ‘चाँदनी बार’, ‘सलाम नमस्ते’ जैसी फिल्में भारतीय समाज के मुखौटे को खोलकर रख दी, जिससे नारी मुख्य रूप से उभरकर आयी। समाज जिस महान नारी को भूलता जा रहा है उसे स्थापित करने की कोशिश इन फिल्मों के माध्यम से की गई। प्रियंका चोपड़ा ने ‘मेरी कॉम’ जैसी महान खिलाड़ी की भूमिका निभाकर जनता की यादों को ताजा कराया - “ओमंग कुमार द्वारा निर्देशित तथा मुम्बई सिनेमा के चर्चित निर्देशक संजय लीला भंसाली द्वारा निर्मित ‘मेरीकॉम’ उसी दिन चर्चाओं में आ गई थी जिस दिन इसके पहले पोस्टर सोशल मीडिया में रिलीज हुए।”³ इसमें मेरीकॉम को केन्द्र में रखकर फिल्माया गया है।

वर्तमान समय में पर्दे पर नारी को वास्तविक हक दिलाने की जद्दोजहद शुरु हो चुकी है। मध्यमवर्गीय परिवार की लड़कियाँ भी परम्पराओं को तोड़कर अपने कैरियर की तरफ ध्यान देने लगी हैं, क्योंकि सिनेमा ने समाज के सच को दिखाने का प्रयास किया है। सिनेमा का ही प्रभाव रहा कि अब गाँव की लड़कियाँ अपने कैरियर की तलाश में शहर की ओर रूख अपनाने लगी हैं। अपने लेख ‘सिनेमा में बदलते परिदृश्य में स्त्री पात्र’ में निभा सिन्हा दिखाती हैं - “‘शुद्ध देशी रोमांस’ की परिणीति चौपड़ा, जो कि एक छोटे शहर की लड़की है शादी के बंधन में बंधने के बजाय लिव इन रिलेशनशिप को तवज्जो देती है। ये महिला

किरदार एक नया और असली मिडिल क्लास इंडिया को दिखाते हैं जहाँ अब शादी ही जिंदगी की इकलौती महत्वकांक्षा नहीं है।⁴ साहित्य की अपेक्षा नारी को सिनेमा में स्वतंत्र रूप से पेश किया जाता है। सिनेमा की नारी किरदार भारतीय सामाजिक परम्परा को लांघ रही हैं, जिसका प्रभाव पूरे भारतीय समाज पर देखने को मिलता है। आज की नारी अपनी इच्छाओं को दमित नहीं करना चाहती, वह समाज के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलना चाहती है।

अब अबला बनकर नहीं जीना चाहती वह समाज के कुचक्रों का तोड़ निकाल रही हैं, अपने हक के लिए लड़ रही हैं और बाकी नारियों को भी अधिकार के प्रति सचेत कर रही हैं, आश्विनी कुमार 'अनारकली ऑफ आरा' फिल्म की समीक्षा करते हुए लिखते हैं - "अनारकली यहाँ मरती नहीं है, मारती भी नहीं है बस नशे में चूर लोगों का उपचार करती है।⁵ कुलपति द्वारा छेड़खानी करने पर अनारकली उसे तमाचा जड़ देती है यह तमाचा, कुलपति पर ही नहीं, बल्कि कुलपति जैसे व्याप्त समाज में पुरुषों पर है। कुलपति द्वारा धमकाये जाने पर भी वह नहीं डरती, सामना करती है। इस फिल्म में अनारकली के साहस और धैर्य को बहुत बारीकी से दिखाया गया है, जिससे भारतीय नारी के अंदर एक ऊर्जा आती है और अपनी इज्जत पर हाथ लगाने वाले को किस प्रकार सबक सिखाया जाना चाहिए सीख मिलती है।

आज के बाजारीकरण युग का फिल्म जगत के स्त्रियों पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। इनका भी बाजारीकरण किया जा रहा है। इनको अश्लील सीन देने के लिए मजबूर किया जाता है। अगर निर्देशकों के अनुसार सीन देने से मना करती हैं तो उन्हें फिल्म से बाहर कर दिया जाता है। अगर मान जाती है तो कैमरे के फोकस की नजर में उनका देह होता है। बाहर होने की डर से अश्लील सीन भी करने के लिए तैयार हो जाती हैं। इसी संदर्भ में अमित कुमार सिंह लिखते हैं "कैमरे की नज़र स्त्री की देह पर इसलिए मचलती है, ताकि दर्शक (पुरुष) को स्त्री (सेक्स) नए ढंग से दिखाई जा सके।"⁶

नारी देह दिखाने के पीछे पुरुष समाज का कामुकता वाला चेहरा छिपा होता है जिससे नारी को आसानी से अपने हवस जाल में फंसा सके। आज के व्यावसायिक दौर में बॉक्स ऑफिस पर फिल्म हिट होनी चाहिए, इसलिए फिल्मों में रोमांस डालने का प्रयास किया जाता है। निर्देशक को अश्लीलता की कोई परवाह नहीं रहती, उसे अपनी फिल्म के सफलता से मतलब रहता है। नायिका चाहे किसी भी तरह मानसिक तनाव से गुजरे उनको कोई मतलब नहीं। सुधा अरोड़ा अपने लेख 'हिन्दी सिनेमा : बदलती स्त्री छवि' में रेखांकित करती हैं - "यहाँ आज के समय में पैदा हुई नये किस्म की त्रासदियाँ हैं, लेकिन मुक्ति के अपने रास्ते और आजादी की अपनी पहचान है।"⁷ फिल्म जगत के नग्न सच्चाई का पर्दाफाश की हैं। वहाँ ऐसा लगता है मानवता पूरी तरह से खात्मे के कगार पर है।

नारी को पुरुष की नामर्दगी भी छिपाने के लिए भी बलि बनना पड़ता है। यह भारतीय परम्परा की ही नहीं, बल्कि विश्व की परम्परा हमें जान पड़ती है। फिल्म 'मदर ऑफ जार्ज' में सास के दबाव के चलते एंडनिके को बच्चा पैदा करने के लिए देवर के साथ संभोग करना पड़ता है। विजय शर्मा एंडनिके के त्रासदी

को रेखांकित करते हैं - "इस क्रिया के दौरान एंडनिके के चेहरे की अभिव्यक्ति और शारीरिक मुद्रा बिल्कुल पत्थर जैसी निर्जीव रहती है। वह पति के साथ केलि-क्रीड़ा में बराबरी का आनंद लिया करती है और यहाँ वह इसे किसी तरह मशीनी ढंग से निपटाती है। क्षण-क्षण बदलते उसके चेहरे के भाव को देखना एक अलग अनुभव प्रदान करता है।"⁸ इस फिल्म के माध्यम से पुरुष समाज के नामर्दगी को कैसे छिपाया जाता है और स्त्री को किसी पर पुरुष के साथ संभोग करने के लिए विवश किया जाता है। यह त्रासदी दिखाया गया है। इतना बड़ा समझौता करने के बावजूद नारी ही पुरुष की नज़रों में गिरती है पुरुष नहीं, जबकि पुरुष को अपने नामर्दगी पर शर्म आनी चाहिए स्त्री को नहीं।

आज के दौर में अधिकतर पुरुष कामकुण्ठा से पीड़ित दिखते हैं। रेखा कस्तवार अपनी पुस्तक में राजेन्द्र यादव की आवाज को दिखाती हैं - "दुनियाँ की शायद ही कोई ईमानदार नारी कथा हो जो अन्ततः सेक्स कथा न हो।"⁹ साहित्य का क्षेत्र हो या सिनेमा नारी को अश्लील रूप में दिखाना आम बात हो गई है।

इधर 'हाइवे' फिल्म में गंभीर रूप से त्रासदी झेल रही नारी की पीड़ा दिखाकर पुरुष समाज के राक्षसी रूप का पर्दाफास किया है इस फिल्म की वीरा एक उच्चवर्गीय और इज्जतदार परिवार की लड़की है। बचपन से ही उसके बड़े पिता उसका शारीरिक शोषण करते हैं। जब वह इस घटना को माँ से बताती है तो उसकी माँ उसे चुप रहने और इस बारे में किसी से न बताने की सलाह देती है। यही तथाकथित सभ्य वर्ग कहलाता है जहाँ छोटी-छोटी बात पर लड़कियों को सलीके की दुहाई दी जाती है और दीवारों के पीछे वीरा जैसी कई स्त्रियों को वस्तु की तरह प्रयोग किया जाता है। इसके लिए वीरा की माँ वीरा को ही नहीं स्त्री समुदाय को दोषी मानती है। इसी तरह प्रभा खेतान के आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में भाई-बहन के साथ जबरदस्ती संभोग करता है और वह दादी माँ के द्वारा चुप करा दी जाती है। इस तरह भारतीय समाज का खोखलापन और स्त्री पीड़ा का दर्दनाक रूप सामने नहीं आने पाता। इसको छिपा दिया जाता है, लेकिन ये फिल्म और आत्मकथा पुरुष समाज की पोल खोलती हैं।

इसी तरह फिल्म 'ब्रिक ऑफ लाइफ' में गर्भवती नारी की पीड़ा को दिखाया गया है, जहाँ ये बच्चों को जन्म देती हैं जनाना घर के दृश्य पर फोकस किया गया है - "समूची फिल्म उसी जनाना वार्ड में कुछ दिनों में घट रही है वहाँ मानवीय पीड़ा है।"¹⁰ पुरुष समाज जिस दिन नारी की पीड़ा को समझ जायेगा उस दिन नारियाँ खुश रहने लगेगी, लेकिन अपने वर्चस्ववादी नीति के आगे स्त्री की सत्ता को दबाये रखना चाहता है, जिस माँ के गर्भ से पैदा होता है उसी को हर जगह नीचा दिखाने की कोशिश करता है।

आज अपने चरित्र की वजह से भारतीय सिनेमा की नारी ने विश्वस्तर पर अपनी पहचान बना ली है। यह सत्य है कि सिनेमा में नारी का बहुमूल्य योगदान रहा, जिसकी वजह से समाज में कई परिवर्तन हुए। नारी नए तरीके से जीने लगी, वह अब सिर्फ भोग्य नहीं रही फैसला भी लेने लगी, लेकिन बाजारवाद के प्रभाव से सिनेमा में नारी को उपभोग की वस्तु के रूप में दिखाया जाता है, इसलिए निर्देशकों को समाज के बारे में पुनः विचार करने की जरूरत है। नारी प्रेरक 'दंगल' जैसी फिल्म बनाना चाहिए, फिर भी थोड़ी बहुत

अश्लीलताओं के बावजूद सिनेमा ने नारियों को रोजगार का अवसर देकर इनको आर्थिक रूप से मजबूत किया है यही वजह है कि नारी काफी हद तक स्वतंत्र रूप से जिन्दगी जी रही है। सिनेमाई नारी के स्वतंत्रता का असर नारी समाज में अब तेजी से दिखने को मिल रहा है अब गाँव की लड़कियाँ भी इनको आदर्श मानकर जींस, टी-शर्ट, शार्ट कपड़े पहनने लगी हैं और कैरियर बनाने को लेकर उत्सुकता दिखाने लगी हैं। अभी भी सिनेमा को जरूरत है - उत्पादकता को नहीं, बल्कि समाज में नारियों को लेकर जो अनेक कुरीतियाँ अभी भी है उसे दिखाकर, समाज में एक नया कीर्तिमान स्थापित करें।

संदर्भ :

1. सुधा अरोड़ा, एक औरत की नोटबुक, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पृ. 47.
2. सुरेश उनियाल, 'एक भगोड़ा नायक बनकर रह जाता है देवदास', कथादेश, सं. हरिनारायण, दिल्ली, अंक 10, दिसम्बर 2017, पृ. 78.
3. मिहिर पंड्या, 'हिन्दी सिनेमा और लोकतंत्र', आलोचना, सं. अपूर्वानंद, नई दिल्ली, सहस्राब्दी अंक 54, अप्रैल-जून 2015, पृ. 103.
4. निभा सिन्हा, 'सिनेमा के बदलते परिदृश्य में स्त्री पात्र', आजकल, सं. जयसिंह, नई दिल्ली, अंक 11, मार्च 2017, पृ. 32.
5. अश्विनी कुमार, 'लीक तोड़ती फ़िल्म : 'अनारकली ऑफ आरा', परिकथा, सं. शंकर, नई दिल्ली, अंक 69, जुलाई-अगस्त 2017, पृ. 93.
6. अमित कुमार सिंह, 'भूमंडलीकरण और भारत परिदृश्य और विकल्प', सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृ. 183.
7. सुधा अरोड़ा, 'हिन्दी सिनेमा : बदलती स्त्री छवि', नया ज्ञानोदय, सं. लीलाधर मंडलोई, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, उत्सव अंक 176, अक्टूबर 2017, पृ. 129.
8. विजय शर्मा, 'इक्कसवीं सदी और फिल्मों में विस्थापन', नया ज्ञानोदय, सं. लीलाधर मंडलोई, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, साहित्य वार्षिकी, जनवरी 2017, पृ. 122.
9. रेखा कस्तवार, 'स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ', राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2016, पृ. 8.
10. जयशंकर, 'सिनेमा पर कुछ नोट्स', वागर्थ, भारतीय भाषा परिषद् कोलकाता, अंक 232, नवम्बर 2014, पृ. 75.